तुलसी-रत्नावली

गोमती प्रसाद पाण्डेय
'कुमुदेश'

प्रकाशक
गोमती प्रसाद पाण्डेय 'कुमुदेश'
चौधरी गढ़ैया
डचोढ़ी आगामीर, लखनऊ

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण
१०००
मूल्य : ७५ न० पै०

मुद्रक
हरिश्चंद्र अग्रवाल
रोहिताश्व प्रिंटर्स
२६८, मालती-सदन, ऐशबाग रोड,
लखनऊ

साहित्य-मर्मज्ञ
तुलसी-स्मारक के प्रेरणा स्रोत
प्रदेश के लोकप्रिय नेता
पं० चतुर्भुज शर्मा
को

सादर समर्पित

निवेदन

महाकवि गोस्वामी तुलसीदास के प्रारम्भिक जीवन-चरित्र के संबंध में हिन्दी साहित्य के कतिपय महारथियों ने विभिन्न प्रकार के विचार प्रकट किये हैं तथा अपने-अपने विचारों की पुष्टि के हेतु कुछ प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं। अतः यह स्पष्ट रूप से कहना कि उनके जीवन की अमुक-अमुक घटनाएँ सर्वथा सत्य हैं उपयुक्त नहीं जान पड़ता। इसी कारण मैंने तुलसीदास और उनकी गृहणी रत्नावली के इतिहास को न लेकर केवल उनके प्रारम्भिक जीवन के कुछ अंश एवं मनोविज्ञान के आधार पर ही प्रस्तुत पुस्तक 'तुलसी रत्नावली' की रचना की है। अतः स्पष्ट है कि इसकी रचनाओं को क्रमबद्ध इतिहास की परिधि में न लाकर स्वतंत्र रूप देने का ही अधिक प्रयास किया है। साहित्य-प्रेमियों एवं पाठकों से आशा है कि वे इस पुस्तक के अन्तर्गत आई हुई घटनाओं की वास्तविकता को दृष्टि में न रखकर केवल कविता का ही रसास्वादन प्राप्त करने की कृपा करेंगे।

पुस्तक के प्रकाशन एवं मुद्रण में परम हितैषी मित्र श्री शिवशंकर मिश्र का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ। उनके प्रति आभार प्रकट करने की औपचारिकता उचित प्रतीत नहीं होती। प्रेस के स्वामी श्री हरिश्चन्द्र जी अग्रवाल का इस कार्य में सहयोग स्मरणीय है।

सच कहूँ तो यदि स्वजनों का प्रोत्साहन और अनुरोध न होता तो इतने शीघ्र प्रस्तुत पुस्तक मुद्रित रूप में पाठकों के सामने नहीं आती। एतदर्थ अपने सब काव्य-प्रेमी स्वजनों को मेरा हार्दिक अभिनंदन।

—कुमुदेश

तुलसी रत्नावली

गोमती प्रसाद पांडेय 'कुमुदेश'

वंदना

मुझको अवलम्ब तुम्हारा सदा,
निज वीणा लिये झनकारती आओ;
शुचि स्वर्ण से सुन्दर वर्ण अलंकृत,
छन्द के बन्द में ढारती आओ;
उर में वर भावना की लहरी,
तुम भारती अम्ब उभारती आओ;
तुलसी-रतनावली की कवितावली
आज समोद सँवारती आओ।

★★★

प्रथम सर्ग

हँसने-सी दिशायें लगीं सुख में
अवनीतले पै हरियाली हुई;
अनुराग-पराग लगा उड़ने
सुषमा वन-बाग की आली हुई;
'कुमुदेश' सुगंध-समीर रसाल
की डाल पसारने वाली हुई;
कल कोकिला पंचम - कंठ से
मोहन मंत्र को फूँकने वाली हुई ।

कलियों में उठान उमंग भरी
उभरी सुषमा सुकुमारता है;
ललके हुये लोचनों से इनको
कहो कौन न आज निहारता है;
'कुमुदेश' न जाने कहाँ-कहाँ से
पिक-व्यूह भी आ ललकारता है;
अलि घूमता है यहीं झूमता है
इन्हें चूमता है चुमकारता है।

वर वायु अबीर उड़ा रहा है
लिये लाल पलाश की झोलियों में;
'कुमुदेश' धमार की धूम मची
मधुपायी मिलिन्द की टोलियों में;
अति प्रेम से प्रेमी विहंगम भी
सुधा घोल रहे निज बोलियों में;
हम भी अब होली मनायें चलो
रँगरेली करें हमजोलियों में।

समझो न पलाश जली कहीं होलिका
ये उसकी चिनगारियाँ हैं;
'कुमुदेश' प्रसून नहीं ये अबीर–
गुलाल से पूरित क्यारियाँ हैं;
अवली तितली की न शोभित ये
इठलाती हुई सुकुमारियाँ हैं;
रवि-रश्मियाँ हैं नहीं अम्बर की
रस–रंग भरी पिचकारियाँ हैं।

ऋतुराज को आज वसुन्धरा पै
सुमनों से सुसज्जित डाली मिली;
मिली चंद्र को चंद्रिका, दिव्य दिनेश को
ऊषा लिये हुये लाली मिली;
मनमोहन को मनमोहिनी राधिका
प्रेम पसारने वाली मिली;
तुलसी का विवाह हुआ उनको
रतनावली है गुणवाली मिली।

बढ़े प्रेम निरन्तर अन्तर में
यह सुन्दर कार्य के लायक हों;
इन पै रघुनायक की हो दया
अनुकूल सदैव विनायक हों;
इस संसृति में सुविचार के सत्य–
के शान्ति के गान के गायक हों;
गुरुदेव ने मंगल कामना की
सभी वर्ष इन्हें सुखदायक हों।

दिन पै दिन स्नेह लगा बढ़ने
वे अतीव विमुग्ध विभोर हुये;
लख के कल कुंतल - वारिदों को
लगे चाव से झूमने, मोर हुये;
जिस ओर फिरे उसके दृग-अम्बुज
वे अलि हो उसी ओर हुये;
तुलसी अपनी रतनावली के
मुख-चन्द्र के चारु चकोर हुये।

चाँदनी - सी तन की है छटा
तम-तोम सी है अलकावली काली;
इन्दु - सा आनन नैन सरोज से
है अधरों पैं गुलाल - सी लाली;
क्या कहना इस सुन्दरी का
जिसकी गज - सी गति है मतवाली;
जाती जहाँ - जहाँ है रतनावली
होती वहाँ - वहाँ है उजियाली।

केश हैं श्याम, नहीं घनश्याम
मयूर क्यों मोद मनाने लगे हैं;
है मुख प्रेयसी का, नहीं पंकज
यों अलि क्यों मँडराने लगे हैं;
ये दशनावली दीप्त, न दाड़िम
चाव से कीर क्यों आने लगे हैं;
शम्भु नहीं उभरे ये उरोज
मनोज क्यों चाप चढ़ाने लगे हैं।

वन-बाग विलोकते हैं कभी वे
कभी होती है सैर नदी के किनारे;
सर में कभी तैरते चाव भरे
फिरते कभी हाट में साज सँवारे;
करते नित स्नेह की बातें निरी
इक - दूसरे पै तन औ मन वारे;
इस भाँति से वे रहते मिल के
जगतीतल के दुख-द्वन्द्व विसारे ।

बैठते दोनों जने हरी घास पै
कोमल पुष्प की शय्या सजाकर;
चाव से हैं पहनाते यहीं इक–
दूसरे को वनमाला बनाकर;
होते विमुग्ध बजा कर वाद्य
तथा कभी मंजु तराना सुनाकर;
कोमल स्पर्श किया करता
'कुमुदेश' इन्हें मलयानिल आकर ।

प्रेम के पाश में ऐसा फँसे फिर
छोड़ दिया नित मन्दिर जाना;
छोड़ दिया तुलसी ने सभी गुरु-
देव की सीख पै ध्यान जमाना;
छोड़ दिया कुछ रोज से है
पढ़ना - लिखना निज ज्ञान बढ़ाना;
याद रहा बस रीझना प्रेयसी
पै या उसे भली भाँति रिझाना ।

बुद्धि विशारदा थी रतनावली
चाहती थी उन्हें पंथ पै लाना;
ठीक लगा नहीं वासना के तिमि-
रांचल में उनका छिप जाना;
चाहती थी अपने पतिदेव को
कर्म के क्षेत्र की ओर बढ़ाना;
चाहती थी इस विश्व के बीच में
ज्ञान की सुन्दर ज्योति जगाना ।

कर जोड़ कहा पतिदेव से क्या
मुझ पै दया ये दिखलाइयेगा ?
सुधि आयी अचानक माइके की
करके कृपा क्या भिजवाइयेगा ?
इतनी अभी शीघ्रता ही क्या अरे !
मुझको भी जरा बतलाइयेगा ?
कभी बात तुम्हारी न टाली प्रिये !
जब चाहियेगा चली जाइयेगा ।

बीतने पै कुछ काल यही फिर
प्रेयसी ने जो प्रसंग चलाया;
उत्तर प्राप्त हुआ उसी भाँति का
तो उसके यह ध्यान में आया;
मेरे यहाँ रहते हुये छूट नहीं
सकती इनसे यह माया;
जा न सकूँगी उपस्थिति में इनकी
यह भी मन में ठहराया ।

अतएव गये जब हाट को वे
गृहणी कुछ सोच-विचार चली गई;
घर लौट के आये तो ज्ञात हुआ
उनके कर की पतवार चली गई;
अति व्याकुल हो गये क्या करें वे
उन्हें दे के वियोग का भार चली गई;
उनके उर ग्रीष्म की ज्वाला जगी
सुखदायी वसंत-बहार चली गई।

★★★

द्वितीय सर्ग

ग्रीष्म को टाला किसी विधि से
अब छेड़ने को बरसात है आयी ;
लेकर चाबुक चंचला की
करती हुई घात पै घात है आयी ;
काटे नहीं कटती कितनी बड़ी
सावन की यह रात है आयी ;
बात की बात में , बात बिना ,
हर बात में, और ही बात है आयी ।

ये घनघोर नहीं, अलकें बक–
पंक्ति नहीं यह मौक्तिक हार है ;
झिल्लियों की ध्वनि है नहीं ये
पग-पंकज-घूँघरू की झनकार है ;
चंचला है चमकी न कहीं 'कुमुदेश'
न तो वरषा की बहार है ;
अप्सरा अम्बर में थिरकी, उसकी
जग में जगी ज्योति अपार है।

डोल उठे मन योगियों के कुछ–
ऐसा विचित्र प्रभाव ले आयी ;
तू ! बरसात नदी - नद में जल का
अति तीव्र बहाव ले आयी ;
बोलते बोल अमोल हैं ये, इन
चातकों में नव चाव ले आयी ;
तू ! अपनी छवि से कवि की
कविता में मनोहर भाव ले आयी।

तप्त धरा का हरा हुआ ही तल
शीतल तू ! जल - धार ले आयी ;
कानन - कुंज औ वाटिका में
सुषमा 'कुमुदेश' अपार ले आयी ;
प्रेमिक - प्रेमिका के हित संचित
प्रेम ही का उपहार ले आयी ;
चंचल हो उठे योगियों के मन
तू ! मन-मोहन मार ले आयी ।

तुलसी को अचानक यामिनी में
सहगामिनी की सुधि आने लगी ;
फिर क्या रग ही रग में रस-रंग-
तरंग नई लहराने लगी ;
उनके उर एक चितेरनी - सी
चल-चित्र विचित्र बनाने लगी ;
मुख - चंद्र, कपोल - गुलाब कभी
दृग-खंजन की छवि छाने लगी ।

बोलो नहीं फिर भी उर का
अनुताप छिपाये नहीं छिपता है ;
हो 'कुमुदेश' कहीं अनुराग–
अलाप छिपाये नहीं छिपता है ;
कोटि प्रयत्न करो–करो पै
अभिशाप छिपाये नहीं छिपता है ;
मानना ही पड़ेगा किसी का कभी
पाप छिपाये नहीं छिपता है।

अपने उर - अंतर की व्यथा को
किसको किस भाँति दिखायें कहाँ ?
क्षण ही क्षण जो बढ़ने लगी है
वह प्रेम की प्यास बुझायें कहाँ ?
अँधियाली निशीथिनी पावस की
नहीं सूझता पंथ है जायें कहाँ ?
जिसकी छवि झूमती लोचनों में
उस रूप की राशि को पायें कहाँ ?

हो उठी तीव्र वियोग-व्यथा
जिससे चल एक भी चाल सके नहीं,
भावना चंचल ऐसी हुई
जिसको उस काल वे टाल सके नहीं;
तीर चुभा कुसुमायुध का उर–
से उसे हाय ! निकाल सके नहीं ;
लाख सँभाला परन्तु वे किंचित
भी अपने को सँभाल सके नहीं।

करने पर कोटि प्रयत्न भी मार का
तीव्र प्रहार है रोके रुका नहीं ;
अपने वश में कर लेता सदा यह
प्रेम अपार है रोके रुका नहीं ;
बढ़ने लगी जो सरिता उसका
'कुमुदेश' उभार है रोके रुका नहीं ;
उठते हुये यौवन में किसी से ये
तरंग का ज्वार है रोके रुका नहीं।

उठके चले तीव्र, तुरंत तरंगिणी
तैर के पार ही आना पड़ा ;
गह सर्प को रज्जु-सा जान उसी
अवलम्ब से ऊपर जाना पड़ा ;
वहाँ सोई हुई रतनावली की
छवि पै निज दृष्टि गड़ाना पड़ा ;
फिर पार्श्व में बैठ के कोमल स्पर्श
से ही उसी काल जगाना पड़ा।

★★★

तृतीय सर्ग

चौंक पड़ी कहा कौन ? अरे तुम
नाथ क्यों ऐसे उतावले आये ?
संयम बाँध विनाशने व्यर्थ ये
वासना वारि बहाव ले आए;
क्या यही लक्ष्य है जीवन का
आए जिससे यही चित्त में चाव ले आए,
लाज जहाज पै गाज गिरा
बन आज यों प्रेम के बावले आये।

चिरकाल से जो शुभचिन्तक है
पति - प्राण समान तुम्हारा प्रिये;
उसके लिए निष्ठुरता इतनी
जिसको नित ध्यान तुम्हारा प्रिये;
अमरत्व प्रदान - सा होगा अरे
बस प्रेम का दान तुम्हारा प्रिये;
उपयुक्त नहीं किसी भाँति से है
इस काल ये मान तुम्हारा प्रिये।

जगजीवनाधार के द्वार ही से
फिरे जा रहे हो, फिरे जा रहे हो;
तुम मोह - मदादि तमीचरों में
घिरे जा रहे हो, घिरे जा रहे हो;
हम कैसे कहें भवसागर से
तिरे जा रहे हो, तिरे जा रहे हो;
सँभलो - सँभलो तुम्हें ध्यान नहीं
गिरे जा रहे हो, गिरे जा रहे हो।

ज्ञान विनाशने के लिए वासना--
वारुणी को ही पिला रही माया;
जीवन में निरे रंग - विरंग--
प्रपञ्च-प्रसून खिला रही माया;
बाँध के बन्धनों में अपने
लघु पुत्तलिका-सी हिला रही माया;
सोचिये तो किसको - किसको
जग में सुख-शांति दिला रही माया ?

तुझसे अति दूर भी होते हुए
उर तेरा टटोलने वाला हूँ मैं;
कर निष्ठुरता का प्रहार भले
नहीं द्वार से डोलने वाला हूँ मैं;
अविवेकी न जान निरा मुझे गूढ़
रहस्य का खोलने वाला हूँ मैं;
प्रिय प्रेम का तोलने वाला हूँ मैं
बड़ा बोल न बोलने वाला हूँ मैं ।

है रहना न सदैव यहाँ पै
तयारी हमारी किसी दिन होगी;
संसृति की यह सम्पदा छूटती
सारी हमारी किसी दिन होगी;
कोई बहाना चलेगा नहीं
जब बारी हमारी किसी दिन होगी;
क्षार मनोहर मंजुल काया
बिचारी हमारी किसी दिन होगी।

ऐसे विनश्वर जीवन से इतना
करना तुम मोह ही छोड़ दो;
उत्तम पन्थ जो है उसी ओर को
ही अपने मन की गति मोड़ दो;
भक्ति की शक्ति महान से नाथ
सभी भव के अब बंधन तोड़ दो;
स्नेह के सुन्दर ताग से ही निज--
को जग जीवनाधार से जोड़ दो।

करके मनुहार मैं हार गया पर
प्यार का है उपहार मिला नहीं;
मझधार में हो रहा विह्वल, संबल–
के लिए कोई कगार मिला नहीं;
भटका हुआ नाहक आया यहाँ, मुझे–
किंचित सौख्य का सार मिला नहीं;
रतनावली हा ! तुझसे मुझको
इक रत्न भी जीवनाधार मिला नहीं।

ठान जो ठान के आये यहाँ, कुछ–
जान भी लो उसके परिणाम की;
वे अलि बन्दी बने जिनको कि
नहीं दिन में सुधि थी इस याम की;
वासना की लपटों से बचो अब
त्याग दो नाथ ये कामना काम की;
नाम जो चाहते हो अपना तुम
गाओ गुणावली राम के नाम की।

बतला रही काम की बात सुनो, तुम–
राम की भक्ति का भार सँभाल लो;
श्रुति - सन्त - पुराण के शब्द में ही
बिखरे पड़े रत्न अपार सँभाल लो;
मझधार से पार जो होना तुम्हें
सुविचार ही की पतवार सँभाल लो;
गिरना फिर होगा न जीवन में
अपने को यहाँ इक बार सँभाल लो।

सत्य सनेहियों पै अपने
किसने निज जीवन बारा नहीं है;
चातकों को घनश्याम ने क्या
'कुमुदेश' कदापि निहारा नहीं है;
चेत जा मानव तू ! अब भी
भवसिंधु का दूर किनारा नहीं है;
किन्तु जो हारा हुआ मन से
उसका यहाँ कोई सहारा नहीं है।

हो न निराश बढ़ो मग में तो
विराम कहीं न कहीं मिल जायगा;
घोर तमस्विनी में भी तमीश
ललाम कहीं न कहीं मिल जायगा;
सत्य सनेह है चातक का घन—
श्याम कहीं न कहीं मिल जायगा;
खोजने से अविराम तुम्हें यहीं
राम कहीं न कहीं मिल जायगा।

करती नित नृत्य मयूरावली
अलकावली क्या जलदावली है;
'कुमुदेश' विलोचन अम्बुज पै
मतवाली हुई मधुपावली है;
लख के मुख-चन्द्र प्रदीप्त प्रिये
सर में विकसी कुमुदावली है;
छवि-अम्बुधि की लहरावली तू;
रतनावली तू, रतनावली है।

सुख - शान्ति प्रदायनी मूर्ति
मनोज्ञता की तुमको मनमानी कहें;
अथवा चिरसंगिनि जीवन की
तुमको अवशेष निशानी कहें;
रति-रम्भा-तिलोत्तमा-मैनका - उर्वशी
या शची मान में सानी कहें;
तुमको मनमोहिनी या अपने
मन - मन्दिर की महारानी कहें।

नाथ अलंकृत बन्द यही किसी–
देवता, देवि या धाम के होते;
तो तिरते तुम भी कहके, दुःख
दूर तुरन्त तमाम के होते;
जैसे उपासक मेरे बने यदि
वैसे कहीं तुम राम के होते;
काम के होते गुलाम नहीं, जग–
में रह के बड़े काम के होते।

सुनके इतना हुए लज्जित वे
मन ही मन में पछताने लगे;
नतमस्तक हो सहसा अपनी
त्रुटियों पर ध्यान जमाने लगे;
प्रतिभा का प्रदीप जगा तब दृष्टि–
में राम - चरित्र ही आने लगे;
तुम धन्य हो देवि क्षमा करना
कहते हुये शब्द यों जाने लगे।

कल्पना दो क्षणों में श्रुति - सार के
विस्तृत क्षेत्र को नाप उठेगी;
भावना भक्ति भरी हुई मेटने
मानवों के परिताप उठेगी;
भाषा हमारी किसी दिन देखना
लेकर शक्ति अमाप उठेगी;
राम - कथा लिखने के लिए
निज लेखनी आप ही आप उठेगी।

चतुर्थ सर्ग

करता रहा कोटि प्रयत्न यहाँ
कठिनाइयों का न किनारा मिला;
दिखला दे सुमार्ग ही ऐसा कोई
न मुझे पथ-दर्शक प्यारा मिला;
किससे कहूँ जाके व्यथा अपनी
अति आकुल ये जग सारा मिला;
भव - सिन्धु में डूबते प्राणियों को
तृण का भी कहीं न सहारा मिला।

मैं जिन्हें भूलना चाहता हूँ उन्हीं
की सुधि नित्य दिला रहा कोई;
मेरी सुबुद्धि विनाशने को मधु-
मोह अनन्त पिला रहा कोई;
और यहाँ मुझसे अपराध के
वृन्द को ला के मिला रहा कोई;
बाँध प्रपंच की शृंखला में यह
कौन-सा खेल खिला रहा कोई

तृप्त पिपासा न हो सकी यद्यपि
वासना वारि को त्याग रहा हूँ;
पीछा प्रपंच किये हुए मेरा
न जाने कहाँ - कहाँ भाग रहा हूँ;
मोह निशा से समावृत्ता संसृति
किन्तु सतर्क हूँ जाग रहा हूँ;
दाग रहा हूँ विपत्तियों को
उमगा अनुराग का राग रहा हूँ।

राम की सेवा करूँ तन से मन
से धन से अब चारा यही है ;
भूले हुए पथिकों के लिए तो
सदैव रहा ध्रुव तारा यही है;
हैं हम प्राणी सभी इसके बस
स्नेही अटूट हमारा यही है;
न्यारा यही सुख सारा यही त्रय--
लोक का एक सहारा यही है।

स्नेहियों के सुखदायक विश्व
में नीति पसारने वाले यही हैं;
दीन के साथ हैं, साथ सदा, गह
हाथ उबारने वाले यही हैं;
दानवों के दल के दल भी
पल एक में मारने वाले यही हैं;
ले अवतार अपार यहाँ भव-
भार उतारने वाले यही हैं।

लेटे हुए वन में रहे सोच यों
चिन्तना ही न करूँ धन-धाम की;
प्राण हैं तो कुछ डोलती अन्यथा
चाम की देह भी है किस काम की;
दृष्टि में आ रहीं जो ये विनश्वर
वस्तुयें हैं सभी विश्व ललाम की;
तो इनका फिर त्याग के मोह मैं
गाऊँ न क्यों विरदावली राम की।

बैठ वहीं तृण-पत्र बिछा कर
राम की मूर्ति को ध्यान में लाए;
बीत गए दिन तीस इसी विधि
अम्बु बिना औ' बिना कुछ खाए;
तो भी समाधि डिगी नहीं नाम
रहे जपते उनके मन भाये;
और कभी हो विमुग्ध उन्होंने
बनाकर के पद भी कई गाये।

तूने दया जिसपै की कदापि
रहा उससे विधि वाय नहीं है;
कौन कहेगा कि विस्तृत विश्व
में कौमुदी-कीर्ति ललाम नहीं है;
मेरा अजामिल सा कुमुदेश तो
नाम हुआ बदनाम नहीं है;
तार ले तारना तेरे लिये अरे
राम ये काम में काम नहीं है।

विद्युत सी चमकी तुलसी ने
विलोका जो सामने राम खड़े हैं;
है जिससे मिलता जग को सुख
आज वही सुख धाम खड़े हैं;
और उन्हें करने को प्रदान
लिये वरदान तमाम खड़े है;
बोले तुझे अब चाहिये क्या
हम सिद्धियों के लिये ग्राम खड़े है।

हो नत-मस्तक बोल उठे तुलसी
कुछ भी अब चाह नहीं है;
ऊब गया भवसागर थाहते–
थाहते पै मिली थाह नहीं है;
जाऊँ कहाँ बतलाइये नाथ
मुझे मिलती भली राह नहीं है;
हैं निज स्वार्थ के स्नेही यहाँ
किसी को किसी की परवाह नहीं है।

मैं सब जानता हूँ तुझको अभी
पाँव यहाँ पै जमाना पड़ेगा;
जो भटके - भटके फिरते उनको
सही राह पै लाना पड़ेगा;
नाशने के लिए द्वेष की भावना
स्नेह के गान को गाना पड़ेगा;
काव्य के द्वारा गिरे हुए मानवों
को अति शीघ्र उठाना पड़ेगा।

जग के छल - छन्द को देखना पै
उसमें तुम भूल के लीन न होना;
कुछ चाहना तो मुझसे कहना
किसी और के सामने दीन न होना;
दुख-द्वंद मिलें सह लेना सभी
हँसते - हँसते उदासीन न होना;
तुम पै नित मेरी कृपा रहेगी
कभी व्याकुल भक्त प्रवीण न होना।

ब्रह्म - विचार में हो अनुरक्त ऐ
भक्त प्रमाद नहीं करना तुम;
शास्त्र की सम्मति पै किसी से
कभी वाद - विवाद नहीं करना तुम;
वे कभी कार्य मिले जिससे किसी को
अवसाद नहीं करना तुम;
जा रहा मैं अब बीते हुए दिन
की कभी याद नहीं करना तुम।

वह मूर्ति विलुप्त हुई उससे
तुलसी - उर में अनुरक्ति समायी;
हट पायी न जो किसी भाँति से वो
'कुमुदेश' अलौकिक भक्ति समायी;
यह ज्ञात हुआ उन्हें भी अभी जो
रग ही रग में नवशक्ति समायी;
सब लौकिक वस्तुओं के प्रति आज
से तो उनमें है विरक्ति समायी।

घूम के मंदिरों में भगवान के
दर्श का लाभ लहा करते हैं;
वेद - पुराण को वे पढ़ के नित
ज्ञान महान गहा करते हैं;
सत्य के स्नेह के सागर में
तुलसी अविराम बहा करते हैं;
हो जिससे सब का हित वे वही
राम - कहानी कहा करते हैं।

पञ्चम सर्ग

कुछ ही दिन बाद लगे लिखने
वह राम - चरित्र जो मानस में है;
पढ़ के जिसको रस ही रस तो
बहने लगता नस ही नस में है;
उसकी प्रतिभा क्यों न ऐसी जगे
जिसका मन ही अपने वश में है;
सब जान गए जग के कितना
बल, भक्ति तथा अति साहस में है ।

राम का जन्म महोत्सव मंजुल
बालपने का मनोहर बाना;
चन्द्र को पास बुलाना तथा
हसना कभी और कभी मुसकाना;
खेलना बालकों के संग में
प्रतिविम्ब को देख कभी सकुचाना;
कौन विमुग्ध न होगा कहो
लख के उनका लघु अस्त्र चलाना।

मुनिराज के संग में जाकर राम ने
ताड़ुका आदि को मार गिराया;
उतपात मिटा जब राक्षसों का
वन में तब चाव से यज्ञ कराया;
रज पाँव की छूके अहिल्या तरी
जिसको सुन के जग है चकराया;
फिर मानस में अति सुन्दर सीय
स्वयंवर का है प्रसंग चलाया।

वरदान लिये युग केकयी ने
फिर राम को है वनवास हुआ;
जिससे वहाँ भी शुचि सभ्यता का
कुछ ही दिन बाद विकास हुआ;
नकटी हुई शूर्पणखा छलिनी
खर - दूषण आदि का नाश हुआ;
हर ले गया रावण जानकी को
उसको नहीं किंचित त्रास हुआ।

देखिये राम के काम यहाँ इक
भीलनी के चखे बेर का खाना;
भेंटना वायु - कुमार को चाव से
और सुकंठ को कंठ लगाना;
मारना बालि को एक ही वाण से
वानर - भालुओं को दुलराना;
जानकी का लगवा के पता पुल
विस्तृत सागर पै बँधवाना।

उस पार हुये जब सिंधु के तो
यह मंत्र तुरन्त विचारा गया;
यदि जानकी दे तो विरोध न हो
समझें कुछ भी न हमारा गया;
पर एक भी मानी नहीं उसने
लड़ने के लिये ललकारा गया;
निज सैन्य तथैव कुटुम्बियों के
सँग रावण युद्ध में मारा गया।

दिन बीत गये वनवास के लक्ष्मण,
जानकी - राम का आना हुआ;
अति हर्ष में मग्न अयोध्यापुरी
के हुये जन, मंगल गाना हुआ;
दृढ़ राज्य की नींव पड़ी तब तो
इस देश का और ही बाना हुआ;
दुखदायी अनीति के पोषकों का
कहीं भी यहाँ पै न ठिकाना हुआ।

अब राज्य के राम ही राजा बने
अविवेकता औ' अनाचार कहाँ;
कपटी, कुविचारियों, तस्करों की
व्यभिचारियों की भरमार कहाँ;
परमार्थ की भावना है सबमें
जगी, स्वार्थ का भूत सवार कहाँ;
सुख - शान्ति वसंत - बहार यहाँ
दुःख दैन्यता की पतझार कहाँ।

•

मद - मत्सर - मोह - मदादि - तमीचर
के दल के दल खो गये हैं;
शुचि भक्ति की भावना से कितने
यहाँ मानवों के अघ धो गये हैं;
निज देश में सत्यता, संयम, स्नेह
के सुन्दर बीज को बो गये हैं;
इस राम - चरित्र को ही लिख के
तुलसी ये महाकवि हो गये हैं।

षष्ठम सर्ग

विद्युत - वारिद द्वारा अचानक
साथ ही तू दिन - रात ले आयी;
वीरबहूटियों - झिल्लियों - दादुरों
की 'कुमुदेश' जमात ले आयी;
विस्मित विश्व हुआ लख के करा—
मात्त ये तू ! बरसात ले आयी;
अंग में लायी उमंग नई हर
बात में और ही बात ले आयी।

प्रिय सागर से मिलने के लिये
सरितायें बढ़ीं इठलाती हुई;
तरु चाव से झूमते हैं उनसे
मिलीं वल्लरियाँ बल खाती हुई;
अलि - वृन्द चले मुख चूमने को
कलियाँ उभरीं मुसकाती हुई;
मद - मस्त मयूरियाँ हो रही हैं
घनश्याम को नृत्य दिखाती हुई।

वर वायु के स्यंदन पै चढ़ के
निज रोष की अग्नि जगाते हुये;
दिल गर्जन से दहलाते हुये
असि - चञ्चला को चमकाते हुये;
सुरचाप चढ़ा के असंख्य बड़े - बड़े
बूँद के वाण चलाते हुये;
विरही - जन को दलने चले हैं
घनश्याम प्रभुत्व दिखाते हुये।

मन उन्मन है तब से जब से
नभ में घिरी घोर घनावली है;
सुन के रट पी कहाँ चातकी की
हो अधीर उठी रतनावली है;
पति को लखने के लिये क्षण ही—
क्षण हो रही और उतावली है;
बहने लगे अश्रु विलोचनों से
वह होने लगी अब बावली है।

अब प्रात को रात बना रहे हैं
इन वारिदों की करामात है ये;
विष घोलता बोलता चातक जो
झकझोरता डोलता बात है ये;
किस भाँति बचेंगी वियोग में यों
अति कंपित कोमल गात है ये;
लगती फिर घात पै घात यहाँ
बरसात है ये, बरसात है ये।

लेकर लेखनी पत्र लिखा तुम्हें
नाथ प्रणाम, दया दिखलाइये;
भूल को मेरी क्षमा करिये यह
आपकी चेरी इसे अपनाइये;
जीवन का रस सूख रहा अब
तो कुछ स्नेह - सुधा सरसाइये;
आपके स्वागत में पलकें बिछीं
आइये, आइये, आइये, आइये।

मन की जो दशा अब हो रही है
उसको किस भाँति दिखायें तुम्हें;
सहती हैं वियोग की वेदना जो
उसे कैसे कहो बतलायें तुम्हें;
तुम भूले रहे हमको इतने दिन
पै हम कैसे भुलायें तुम्हें;
उर - अंतर में यही लालसा है
तुम पै बलि जायें, जो पायें तुम्हें।

पत्र मिला तुलसी को पढ़ा समा–
चार प्रिया का मिला उन्हें सारा;
उत्तर में लिखा हर्ष हो जीवन
में नित आशिष है ये हमारा;
किन्तु मैं विस्मित हूँ, बदली हुई
देख तुम्हारे विचार की धारा;
पा सकोगी इसी भाँति से क्या
भव-सागर का तुम शीघ्र किनारा।

दिखला दिया पंथ मुझे पै तुम्हें
कहाँ चाहिये ज़ाना विचार सकीं नहीं;
उर में लिये ज्ञान - महान रहीं
ममता-मद-मार को मार सकीं नहीं;
समझूँ क्या यही, अपने सिर का भी
लदा हुआ भार उतार सकीं नहीं;
तुमने मुझको तो सुधारा परन्तु
प्रिये! अपने को सुधार सकीं नहीं।

मैं बड़े हर्ष से हूँ अब राम ही
का गुणगान किया करता हूँ;
पाप विनाशिनी जाह्नवी का यहाँ
पै जलपान किया करता हूँ;
सज्जन - साधुओं का कला - कोविदों
का नित मान किया करता हूँ;
मानस के कुछ अंश सुनाकर
शान्ति प्रदान किया करता हूँ।

मेरे लिये वहाँ पै अब तो किसी
भाँति से आना न सम्भव होगा;
मोह के बन्धनों में अपने को
कदापि फँसना न सम्भव होगा;
पैर बढ़ाया जहाँ वहाँ से 'कुमुदेश'
हटाना न सम्भव होगा;
साथ ही साथ तुम्हारी प्रिये
सुधि को भी भुलाना न सम्भव होगा।

चाहती साथ निभाना प्रिये
शुचि-स्नेह के गान को गाना पड़ेगा;
मैं जिस राह पै जा रहा हूँ तुमको
उसी राह पै आना पड़ेगा;
मार, मदादि विकार सभी उर–
देश से दूर हटाना पड़ेगा;
दूसरों के हित के लिये ही
निज जीवन - सौख्य लुटाना पड़ेगा।

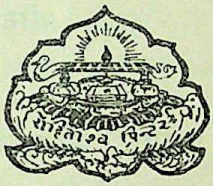

'कुमुदावली'
पर साहित्य-मर्मज्ञों की सम्मतियाँ

आशिष

श्री 'कुमुदेश' जी ने अपने छंदों का यह संग्रह प्रकाशित कर हिंदी काव्य के प्राचीन परम्परासम्मत अंग का वर्द्धन किया है। 'कुमुदेश' जी के छंद प्राचीन रूप में होते हुये भी खड़ी बोली में हैं, तथापि सौंदर्य और सरसता में ब्रजभाषा के छंदों से टक्कर लेने को तैयार हैं। श्री सनेही जी और श्री हितैषी जी ने जिस धारा को जन्म देकर पोषित किया उसी धारा का यह संग्रह एक सुन्दर उदाहरण है। कुमुदेश जी नवयुवक और होनहार कवि हैं। वे हिन्दी काव्य की इस धारा में ख्याति प्राप्त करेंगे। ऐसी मुझे आशा है।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

पुरानी परिपाटी की नवीन कड़ी

'कुमुदेश' जी की कुछ रचनाएँ मैंने पढ़ी हैं और कुछ सुनी हैं। इनसे विशेष सम्पर्क कवि - गोष्ठियों और समस्या - पूर्ति सम्मेलनों के अवसर पर हुआ। इन गोष्ठियों और सम्मेलनों में 'कुमुदेश' जी की रचनाओं और उसके पाठ दोनों ही के लालित्य से मैं प्रभावित हुआ। सवैया और घनाक्षरी 'कुमुदेश' जी के जैसे निजी छन्द हैं। ब्रजभाषा के

तो ये दोनों विशिष्ट एवं प्रकृतिगत छन्द हैं ही पर खड़ी बोली में भी ये बड़े अच्छे ढलते हैं। शंकर, सनेही, हितैषी, हरिऊ आदि ने खड़ी बोली में सुन्दर सवैया और घनाक्षरी छन्द लिखे हैं। 'कुमुदेश' जी उसी परिपाटी के एक कवि हैं।

'कुमुदेश' जी रचना में अलंकरण का आडम्बर नहीं और न अभिव्यक्ति की वक्रता ही है। फिर भी सहज रूप से इनकी भावाभिव्यक्ति में मनोरम कल्पना सम्मिश्रित रहती है। इनकी रचना विषय की दृष्टि से वैविध्य पूर्ण हे। वैचारिक उदात्तता की छाया प्रायः अनेक छन्दों में प्रतिबिम्बित दिखलाई देती है। आशा है कि इनकी आगे आनेवाली कृतियाँ इस परम्परा की उज्ज्वल देन बनेंगी।

भगीरथ मिश्र

अध्यक्ष हिन्दी विभाग, पूना विश्वविद्यालय

सुन्दर और सरस

'कुमुदावली' के लिए हार्दिक धन्यवाद।

रचना सुन्दर और सरस है। आपकी उत्तरोत्तर सफलता की कामना करता हूं।

चिरगाँव
१४-४-६१

मैथिलीशरण